# ज़िन्दगी का सिस्टम

**लेखक** : आयतुल्लाहिल उज़मा सय्यदुल उलमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़वी
**सम्पादन** : नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

क़िस्त : 14

## एक ज़रूरी बात

नमाज़ के वक़्त के फ़ायदे के बयान में मैने कारोबारी लोगों को सामने रखा है, क्योंकि यही वह लोग है जो ज़िन्दगी के मक़सद को पूरा करते हैं और अपने काम धाम की बरकतों से फ़ायदा उठाते है, उन चलते–फिरते मुर्दा लोगों की बात नहीं है जिन्होने सुस्ती के कारण अपनी ज़िन्दगी को मौत का नाम बना लिया है, ये लोग अगर नमाज़ें भी पढ़ें तो कोई ख़ास अच्छाई नहीं है। कुर्आने मजीद में जिन लोगों की तारीफ़ की गयी है वह ये है कि–''

वह लोग जिनको व्यापार, और बिकरी (खरीदना–बेचना) ज़िक्रे ख़ुदा की याद ध्यान से बे परवाह नहीं करती। ''इमाम (अ0) ने बताया , कि इसका ये मतलब नहीं है कि वह कारोबार और लेन देन नहीं करते, नहीं ये ग़लत है बल्कि इसका मतलब ये है कि वह कारोबार और लेन देन करते हैं और फिर भी नमाज़ और खुदा के ध्यान से बेपरवाह नहीं होते।

यही जीवन खुदा की नज़र में इज़्ज़त वाला है और इसे कुर्आन ने सराहा है।

## नमाज़ का आम एलान, यानी ''अज़ान''

जिस तरह नमाज़ ख़ुदा को याद दिलाने का माध्यम है, उसी तरह नमाज़ की याद दिलाने और बेख़बर लोगों को बाख़बर बनाने के लिए अज़ान का हुक्म हुआ है।

सुन्नी लोगों ने अज़ान के बयान के सिलसिले को खुदा की ''वही (खुदा की तरफ़ से फ़रिश्ते के ज़रिये नबी को भेजा गया पैग़ाम) से बिल्कुल अलग कर लिया है। उनके नज़दीक ये अज़ान का आधार कुछ सहाबियों (रसूल स. के साथियों) के सपने पर है।

मगर शीया मज़हब की रवायतों के अनुसार इबादत (भक्ति) का कोई हिस्सा वही से अलग नहीं हो सकता और उसका आधार सपने व ख़्याल पर बिल्कुल नहीं होता, फिर अगर सपना भी रसूल (सं0) का होता तो उसे 'वही' की एक शाखा कहा जा सकता था। एक आम आदमी का सपना उस पर रसूल (स0) की तरफ़ से उसे इबादत का हिस्सा बना देना, ये नहीं हो सकता। हमारे यहां इस बारे में जो रवायत (कथन) है वह नीचे दी जा रही है, इसी से आपको मालूम हो जाएगा कि अधिक मुसलमानों को इस मसले में 'वही' के इन्कार की क्या ज़रूरत पड़ी।

मन्सूर बिन हाज़िम की रवायत है कि इमाम जाफ़र सादिक़ (अ0) फ़रमाते है। – ''जिब्राईल (ख़ुदा की तरफ़ से भेजा गया फ़रिश्ता) अज़ान लेकर रसूल मुहम्मद साहब के पास आये तो उस वक़्त आपका सर हज़रत अली सुपुत्र अबु तालिब (अ0) की गोद में था, जिब्राईल ने अज़ान कही और एक़ामत कही, जब आप (स0) ने आँख खोली तो पूछा, या अली (अ0) तुम ने सुना ? कहाः ''हाँ, याद भी कर लिया''? कहाः ''जी हाँ,'' आपने कहा बिलाल को बुला लाओ, उन्हें सिखा दें'' उसके बाद बिलाल को अज़ान और एक़ामत सिखाई।''

इस वाक़ेये में हज़रत अली (अ0) के कुछ आ जाने ने लोगों को इस बात पर उकसाया कि वह सिरे से अज़ान के लिए 'वही' को माने ही ना, चाहे इससे रसूल (स0) की शान और स्तर को ठेस ही पहुँच जाए।

इमाम जाफ़र सादिक़ (अ0) से रवायत है कि – आपने उस गुट पर लानत (फिटकार की) जिसका ये ख़्याल है कि रसूल (स0) ने 'अज़ान' को अब्दुल्लाह बिन ज़ैद से सीखा है। आप (अ0)फ़रमाते थे–'' वही ' तो तुम्हारे पैग़म्बर (स0) पर आती थी और फिर भी तुम समझते हो कि अज़ान को अब्दुल्लाह बिन ज़ैद से लिया गया।'' (यानि सीखा है)

दूसरे धर्मों में भी भक्ति, पूजा के वक़्त का एलान करने के कुछ तरीक़े हैं, जैसे शंख या बाजा, राजाओं के यहॉ नौबत खाना नगाडा आदि। आपके यहाँ

कारख़ानों में मज़दूरों को काम करने का बुलावा देने के लिए भोंपू की आवाज़ होती है मगर वह सब अपने मक़सद के लेहाज़ से आवाज़ रखने के बाद भी चुप हैं यानि जो न जानता हो उसको वह ख़ुद नहीं बता सकते कि वह किस चीज़ का बुलावा दे रहे हैं, उनका मक़सद क्या है और किस जमाअ़त (वर्ग) से सम्बन्ध रखते हैं।

मगर इस्लामी नमाज़ का आम एलान जो 'अज़ान' के ज़रिए से होता है वह अपने सब मक़सद को ख़ुद ही बताता है, इसमें सिर्फ़ आवाज़ ही नहीं बल्कि शब्द भी हैं जो अपने गुट के सारे गुण हैं।

सबसे पहले ''अल्लाहो अकबर'' है, यानि ख़ुदा सबसे बड़ा है, इसमें अल्लाह की बेहद महानता का मानना है। 'कबीर' के माने बड़ा और 'अकबर' के माने किसी दूसरी चीज़ से ज़्यादा बड़ा, इसमें किसी और का ध्यान छिपा तो ज़रूर है मगर अल्लाहो अकबर के शब्द में उस और की कोई बात नहीं है, इससे इसके माने में ज़्यादा विस्तार पैदा हो गया है। अगर आप ग़ौर करें तो इन्सान दूसरी ताक़तो से प्रभावित होकर बहुत सी बातें अपने अन्तःकरण और सच्चाई के ख़िलाफ़ कर डालता है, और वह बातें जिनसे कोई दूसरे की ओर या उसके सामने झुकता है, वह तीन चीज़ें हैं––

1–लालच 2–डर 3–सामने वाले की महानता का एहसास।

लालच से दूसरे की और झुकता है, डर से दूसरे के सामने झुकता है, और बड़ाई के एहसास से उसकी ओर भी मेल पैदा होता है और उसके सामने सर भी झुकता है। मगर किसी चीज़ की लालच उसी समय इन्सान को प्रभावित करेगी जब उससे बड़ी कोई लालच सामने न हो। एक डर तभी प्रभावित करेगा जब उससे बड़ा कोई डर न हो। किसी की बड़ाई की धाक उसी वक़्त हो सकती है जब उससे बड़ी महानता सामने न हो।

इस्लाम ने चाहा है कि वह सारी भावनायें/मानसिकताएं जो किसी को सच्चाई के ख़िलाफ़ अ़मल करने पर बेबस करते हैं, उनसे आगे एक ऐसा एहसास पैदा किया जाए जो उन सबसे ऊंचा हो।

लेकिन 'अकबर' शब्द के बाद अगर किसी चीज़ की बात आ जाती तो माने सीमित हो जाते क्योंकि उस चीज़ की ओर झुकाव या तो लालच से होता या डर से या फ़िर बड़ाई की वजह से समझा जाता, मगर जब किसी चीज़ की बात नहीं है तो अब उसके अर्थ सीमित नहीं रह गए।

इसका मतलब ये है कि अगर तुम दुनिया में किसी चीज़ से आस रखते हो तो याद रखो कि सबसे बड़ी आस ख़ुदा से है, अगर किसी का डर रखते हो तो निश्चय ही सबसे बड़ा डर ख़ुदा से हो सकता है और अगर किसी की निजी बड़ाई से प्रभावित हो तो सबसे बड़ा ख़ुदा है, इसलिए हर वक़्त उसको राज़ी ख़ुश रखने का ख़्याल रखो और दुनिया की किसी चीज़ का ख़्याल न करो। इससे इन्सान में भरापुरापन, आज़ादी, अपने पर भरोसा और स्वाभिमान (अपने का रख रखाव) पैदा होगा और वह दुनिया में किसी ग़लत ज़ज़्बे से प्रभावित नहीं होगा और सदा सच्चाई कहेगा और सत्य का पुजारी रहेगा।

अब देखिए कि नमाज़ और उससे जुड़ी बातों में इस 'तकबीर' (अल्लाहु अकबर) पर सबसे ज़्यादा ज़ोर दिया गया है। ये अज़ान में भी सबसे पहले है, इक़ामत और नमाज़ में भी सबसे पहले है। नमाज़ में एक हालत (Position) से दूसरी स्थिति में जाते वक़्त भी तकबीर रखी गई है और नमाज़ के ख़त्म होने के बाद भी तीन बार तकबीर (अल्लाहु अकबर) कहने का हुक्म दिया गया है।

ख़ुद अज़ान में गिनती के लेहाज़ से भी इसे बढ़त दी गयी है अगर दूसरी चीज़ें दो बार कहना है तो 'अल्लाहो अकबर' शुरू में चार बार और अज़ान के अन्त में दो बार।

इस्लाम के आदि काल में इसकी बड़ाई का ध्यान रखने वाले अज़ान और एक़ामत के अलावा भी अवसर बे अवसर इसका इस्तेमाल करते थे और उसमें इतनी धाक होती थी कि असत्य वाले थर्रा जाएं।

अमीरुल मोमिनीन हज़रत अली (अ0) का चलन था कि जिहाद (धर्म संग्राम) में जब किसी को वध करते थे तो तकबीर (अल्लाहु अकबर) कहते थे। चुनांचे ''लैलतुल हरीर'' में आपकी तकबीरों की गिनती से ही मारे जाने वालों की संख्या का अंदाज़ा किया गया।

मगर याद रखिए कि हर चीज़ का ग़लत इस्तेमाल उसके महत्व को ख़त्म कर देता है। मुसलमानों ने ऐसे–ऐसे ग़लत मौक़ों पर यह नारे लगाये कि अब

उसकी कोई साख नहीं रही, हद ये है कि कहा जाता है कि 'आषूरा' (दसवीं मुहर्रम जिस दिन इमाम हुसैन शहीद हुए) ह0 इमाम हुसैन (अ0) के वध पर भी तकबीरें कही जा रही थीं। एक अरब शायर ने कहा है– ''(ऐ हुसैन (अ0) ये लोग आप के क़त्ल पर तकबीरे (अल्लाहु अकबर) कह रहे हैं, जबकि इन्होंने आपके साथ साथ खुद तकबीर व तहलील (ला इलाह इल्लल्लाह) को वध कर दिया। आज भी मुसलमानों की ज़बानों पर अल्लाहु अकबर के नारे सुनाई देते हैं कुछ उन अवसरों पर जब उनके हमले मुसलमानों ही पर होते हैं, जिसकी इस्लाम निन्दा करता है और धर्म मज़हब इस पर गुहार करते हैं।

अच्छा इसे जाने दीजिए, मुसलमानों के ग़लत चलन की ज़िम्मेदारी इस्लाम पर तो नहीं है और उससे किसी तरह 'अल्लाहु अकबर' की उस महानता और अहमियत पर कोई असर नहीं पड़ता जो सच में उसकी है।

चार मर्तबा 'अल्लाहु अकबर' कहने के बाद दूसरा टुकड़ा है– *'' अशहदु अल्ला इला–ह इल्लल्लाह''* ये तौहीद (एकेश्वरवाद) का ऐलान है जो इस्लाम का अस्ली ध्येय मक़सद है। गैश्वरवाद (Trinity) के मानने वाले ईसाई ''तौहीद एकेशवरवाद के परदे में खुदा को एक मानने का दावा करते है और आर्य धर्म के लोग भी अपने को एक ईष्वर का मानने वाला कहते हैं, मगर सच्ची तौहीद (ख़ुदा को एक मानना/एकेश्वरवाद) का पता इस्लाम के अलावा कहीं नहीं है।

जहाँ तक अल्लाह के होने का मानना है, मुशरिक (कई ईश्वर के पुजारी) कहते थे––'' हम इन मूर्तियों की पूजा इसलिए करते हैं कि ये हमको ईश्वर/अल्लाह से क़रीब कर दें।'' और धरती और आसमान का पैदा करने वाला भी वह अल्लाह को समझते थे। कुरान में है– ''अगर इनसे पूछो कि आसमान और ज़मीन को किसने पैदा किया तो ये कहेंगें, अल्लाह ने।''

मगर यहाँ तो सवाल अल्लाह के अलावा दूसरे खुदाओं के न मानने का था। इस्लाम ये कहता था कि जब पैदा करने वाला सिरजनहार वही है तो 'पूज्य' भी सिर्फ़ उसी को मानो उसी की भक्ति और पूजा करो। वह कहते थे कि नहीं, हम दूसरों को भी पूज्य मानेगें।

आप इसे यूँ कह सकते है कि ''तवल्ला'' (लगाव) यानि मानने में एख़्तेलाफ़ या मतभेद नहीं था, जो कुछ एख़्तेलाफ़ था वह ''तबर्रा'' (अलगाव) में, यानि दूसरे खुदाओं से दूरी रखने और छोड़ने में था। इस्लाम झूठे खुदाओं से अलग थलग रहने को सामने करता था और यहीं से भेद की खाई पैदा होती थी। इस्लाम के इस कलमे (धर्म सूत्र) *''लाइला–ह–इल्लल्लाह''* में इसी लिए 'इनकार' को 'मानने' से आगे रखा है। इसमें नकारने पर ज़ोर देना था, अगर ये कह दिया जाता कि *''अल्लाहु हक़्क़ुन''* (अल्लाह सत्य है) तो शायद सब इसको कहने पर तैयार हो जाते मगर इसमें तो अल्लाह के सिवा हर एक भगवान के नकारने का ऐलान था जिसे अरब के कबीले अपने विश्वास पर गहरी चोट समझते थे। और इसी पर आग बगूला होकर रसूल (स0) से लड़ाई ठान ली उन्होंने रसूल (स0) को लालच भी दिलाया और डराया भी, सताया भी और खून बहाने पर भी उतारू हो गए मगर रसूल (स0) की ज़बान इस सत्य कलमे से चुप नहीं हुई। वह सहन करने, जमे और अडिग रहने के साथ इसी कलमे के प्रचार में लगे रहे। दुनिया एक तरफ़ और वह खुदा के पैग़ाम का एलान करने वाला एक तरफ़, एलान करता हुआ कि,'' कहो *ला इला–हा–इल्लल्लाह* ––तुम्हारा ही भला होगा।''

दुनिया ने देखा कि विरोधों की बाढ़ उमड़ी और चली गयी, कठिनायों की आँधिया आईं और चली गयीं, मगर रसूल (स0) के सहन का पहाड़ अपनी जगह से हिला भी नहीं और आख़िर वही आवाज़ जो सिर्फ़ रसूल (स0) के होंठों से ऊंची हो रही थी और दुनिया उसे चुप करना चाहती थी, वही आवाज़ आज कितने एलान के साथ हर मिनार और मस्जिद से ऊंची होती है और दुनिया सुनती है *''अश–हदोअल्लाइला–ह इल्लाल्लाह''* ये बोल रसूल (स0) की जीत का एलान और इस्लाम की सच्चाई का निशान है और इसलिए अनिवार्य रूप से इस को अज़ान का एक हिस्सा रखा गया। दो बार तौहीद (अल्लाह को एक मानने) की गवाही देने के बाद फिर कहा जाता है *'' अश–हदु अन्ना मुहम्मदर्रसूलुल्लाह''* (''मैं गवाही देता हूँ कि हज़रत मुहम्मद स0 खुदा के पैग़म्बर दूत हैं'' यह रसूल की सदा रहने वाली याद है। खुदा ने कुरान मजीद में वादा किया है

''इसके मानी तो यह हैं कि तुम मुझे याद करो तो

मैं तुम्हें याद करूँगा। रसूल (स0) ने अपना जीवन ख़ुदा की याद में बिता दिया तो ख़ुदा ने भी हमेशा के लिए अपने ज़िक्र (सुमिरन) के साथ उनका ज़िक्र ज़रूरी कर दिया। फिर अज़ान में रसूल का बयान निजी (Personal) गुणों के रूप से तो नहीं है जैसे आप (स0)का अरब ख़ानदान से होना, कुरैष क़बीले (जाति) से होना, मक्की और हाशिमी होना या अब्दुल्लाह सुपुत्र अब्दुल मुत्तलिब का बेटा होना। बल्कि यह बयान तो उस पद के लिहाज़ से है जो ख़ुदा की तरफ़ से उनको दिया गया था। इसलिए वह असल में रसूल के नाम का एलान नहीं है बल्कि उस पैग़ाम की सच्चाई का एलान है जो हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा स0 के ज़रिए से दुनिया को पहुँचा जिसका नाम 'इस्लाम' धर्म (शास्त्र) है। इसके बाद अज़ान के टुकड़े के लेहाज़ से तो नहीं मगर ईमान के हिस्से के लेहाज़ से किसी कुदरती (प्रकृति/प्रभुत्व) के इन्तेज़ाम के तहत मुसलमानों के एक बड़े वर्ग में यह चलन हो गया है कि वह *''अश्-हदु अन्ना अलीयवँ वलीउल्लाह''* (मैं गवाही देता हूं कि अली अ. अल्लाह के वली/घने दोस्त हैं) या उसके अर्थ को भी अज़ान में कहते हैं। मैं इसे कुदरत का इन्तेज़ाम इसलिए कहता हूँ कि यह शिया उलमा की कोशिशों का नतीजा है मगर उलमा का इस विषय में यह हाल है कि कोई तो अज़ान के टुकड़ों में इसका सिरे से बयान ही नहीं करता और अगर कोई बयान भी करता है तो साफ़ लिख देता है कि यह अज़ान का हिस्सा नहीं है। इसमें शिया फ़िरक़े का यह जग छाया चलन ज़रूर कुदरती इन्तेज़ाम का ही नतीजा है। बहरहाल तबरसी' की पुस्तक में एक रवायत (कथन) है कि जब भी रसूल होने की गवाही दो तो वली होने की गवाही ज़रूर दो। इससे अज़ान में भी ज़रूर ह0 अली अ0 के वली होने की गवाही का हुक्म निकलता है, इस लेहाज़ से इसको अज़ान का एक मुस्तहब (वछनीय) हिस्सा समझा जा सकता है।

अब इसके बाद वह बोल है जो हक़ीक़त में नमाज़ की ओर बुलाने वाला है और वह *''हय्या अ–लस्सलाह''* है इसका मतलब तो यह हुआ कि नमाज़ के लिए बढ़ो, मगर जो शब्द इसके लिए लाया गया है उसमें 'हयात' (ज़िन्दगी) का इशारा है। अब आप इसको इस तरह भी समझ सकते हैं यानि अपने बेजान दिल में कर्म की रूह पैदा करो, अपनी मौत को जीवन में बदल दो और ख़ुदा के सामने नमाज़ की हालत में हाज़री दो।

अब *'' हय्या अलल्फ़लाह''*, ये नामज़ का नतीजा है, इसका मतलब ये है कि इस नमाज़ में तुम्हारे लिए नजात/मोक्ष है। आओ इस की तरफ़ जो ख़ुद तुम्हारी भलाई और नजात का ज़रिया है।

*'' हय्या अला ख़ैरिल अ़मल''* ये इस कर्म (नमाज़) की ऊंचाई और बड़ाई की बात है यानि इसे कोई छोटी चीज़ न समझो, ये बहुत अच्छा काम है।

सारी इस्लामी किताबों से ये बात साबित है कि ये टुकड़ा (हय्या अ़ला ख़ैरिल अ़मल) रसूल (स0) के समय अज़ान में शामिल था और कहा जाता था। बाद में राजनीति की वजह से इसको निकाल दिया गया और ये उस वक़्त हुआ जब मुसल्मानों को जेहाद उकसाया जा रहा था, तो ये ख़्याल किया गया कि ये लोग अगर सबसे अच्छे काम नमाज़ को समझ लेंगे तो जेहाद की तरफ़ जी कम लगेगा, इसलिए इस टुकड़े को अज़ान से हटा दिया गया। मगर हम तो रसूल (स0) की शिक्षा और अ़मल के बाध्य (बन्धे)हैं और इसीलिए इस *(हय्या अला ख़ैरिल अ़मल)* को अज़ान के टुकड़े में ज़रूरी समझते है।

इसके बाद फिर आख़िर में दो बार *''अल्लाहो अकबर''* है जिससे ख़ुदा की बड़ाई का दोबारा एहसास पैदा कराया जाता है। और अज़ान के एकदम आख़िर में दो बार *''ला इला–ह इल्लल्लाह''* इससे ये ख़ास फ़ायदा मिला है कि अज़ान शुरू भी अल्लाह के नाम से हुई और ख़त्म भी अल्लाह के नाम पर हो गयी।

अगर *'अल्लाहु अकबर'* आख़िरी टुकड़ा होता तो आख़िर में अल्लाह के नाम के बजाए उसका एक गुण यानि 'अकबर' आता लेकिन *'ला–इला–हइल्लल्लाह'* पर अज़ान के ख़त्म होने से 'अल्लाह' से आरम्भ और 'अल्लाह' ही पर समापन हुई, और यहाँ ये बता दिया कि – वही पहला है और वही अन्तिम है, उसी से शुरू हुई और उसी की तरफ़ पलटना है।

## एक़ामत

एक़ामत में भी लगभग यही टुकड़े हैं, केवल यहां *''अल्लाहु अकबर''* शुरू में दो बार और आख़िर में *''ला–इला–हइल्लल्लाह ''*एक बार है। चूँकि अज़ान दूर वालों को नमाज़ का ऐलान करके पास बुलाने के लिए है इसलिए अज़ान में नमाज़ से ताल्लुक़ रखने वाला सिर्फ़ ये एक बोल है– *''हय्या अलस्सलाह''* यानि

नमाज़ के लिए बढ़ो। अब बढ़ने की हदें अलग–अलग हैं, कोई दूर रहता है और कोई पास इसलिए अज़ान में ठहर–ठहर कर कहना और तरतील के साथ यानि बढ़ा–बढ़ा कर और खींच कर शब्दों का बोलना बेहतर है, और इसमें शब्दों का ऊँची आवाज़ से निकालना ज़्यादा अच्छा है। मगर 'एक़ामत' तो नमाज़ का सबसे पास का पैग़ाम है जो उन लोगों के लिए है जो पास में मौजूद हैं उन सबको बिना किसी भेद के नमाज़ के लिए खड़े होने का न्योता देती है इसलिए एक़ामत में एक जुम्ले को बढ़ा दिया गया यानि *"है–य अलस्सलाह"*, *"हय्या अलल्फ़लाह," "हय्या अ़ला ख़ैरिल अ़मल"* दो–दो बार कहने के बाद दो बार*"क़द्–क़ा–मतिस्सलाह"* यानि बस अब कोई इन्तेज़ार नहीं अब नमाज़ खड़ी हो गई है, इसलिए अच्छा है कि इसके कहते ही सफ़ (नमाज़ के लिए लाइन में खड़े होना) बांध कर खड़े हो जाइए और अब देर न कीजीए इसके बाद अस्ल नमाज़ शुरू हो जाती है, और बस।

## नमाज़ की शर्तें

नमाज़ के लिए कुछ टुकड़े हैं और कुछ शर्ते हैं

पहली शर्त पाकीज़गी होना है जिसका बयान इसके पहले हो चुका है। दूसरी शर्त 'वक़्त' की है, पांचों वक़्त की नमाज़ के लिए अलग–अलग ख़ास वक़्त निश्चित कर दिया गया है। उस ख़ास वक़्त से पहले वह नमाज़ नहीं पढ़ी जा सकती और वक़्त चले जाने के बाद उस नमाज़ के अदा (समय पर पढ़ना) करने का मौक़ा नहीं रहता। हाँ 'कज़ा' (छुटी नमाज़ का बाद में पढ़ना) तो एक नया फर्ज़ कर्तव्य लागू हो जाता है जिसके पढ़ने का कोई वक़्त निश्चित नहीं होता। इसका अस्ल नमाज़ के हुक्म से जो (निश्चित) वक़्त से जुड़ा था, कोई लगाव नहीं है।

वैसे तो हर नमाज़ को अदा करने के लिए धर्मशास्त्र की तरफ़ से बहुत ज़्यादा वक़्त दिया गया है, जैसे सुबह की नमाज़ के लिए सुबह साादिक़ से लेकर सूर्योदय सूरज के ढलने (सूरज के निकलने) तक।

ज़ुहर व अस्र के लिए सूर्योदय (सूरज के ढ़लने से लेकर) से लेकर सूरज डूबने से पहले तक, मग़रिब व इशा के लिए सूरज डूबने के बाद से आधी रात तक। मगर इस बात पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिया गया है कि हर नमाज़ को वक़्त आने के साथ ही पढ़ लें। इसमें बेवजह देर करने की बड़ी निन्दा या बुराई की गई है और क़ुर्आने मजीद में जहाँ–जहाँ ' नमाज़ की रक्षा करो' की तरह के शब्द हैं, वहाँ रक्षा के मानी यही लिए गए हैं कि नमाज़ों में शुरू शुरू वक़्त का ख़्याल रखा जाए।

एक हदीस में जो रसूल (स0) से दुहराई है, उसमें है कि "जो नमाज़ को उसके निश्चित वक़्त के ख़िलाफ (अन्त समय) पढ़ता है, तो वह नमाज़ इस तरह ऊंची होती है कि स्याह काली और अंधेरी, होती है और वह कहती है कि तूने मुझे बरबाद कर दिया। "हद ये है कि जनाबे रसूल (स0) फ़रमाते है कि– "मेरी शफ़ाअ़त (सिफारिश) का हक़दार वह नहीं है जो नमाज़ में उसका वक़्त आने के बाद देर करे।"

इमामे जाफ़र सादिक़ (अ0) की रवायत (कहना) है कि रसूल (स0) ने अपनी ज़िन्दगी के आख़िरी वक़्त जब मौन से पहले की बीमारी में थे, बेहोश थे, फिर कुछ बेहोशी टूटी, तो ये शब्द कहे (जो ऊपर बयान किए गए हैं)

दुःख की बात है और सबक़ लेने की बात का वक़्त है कि आज सबसे ज़्यादा ये कमज़ोरी शियों में पैदा हो गई है। हमारी ख़ासियत ही ये हो गई है कि हम नमाज़ के पहले वक़्त की अच्छाई और महत्व की कोई परवाह नहीं करते, जबकि इमाम जाफ़र सादिक़ (अ0) फ़रमाते हैं–"

हमारे शियों का तीन बातों से इम्तेहान लो–

नमाज़ के (पहले) वक़्त की रक्षा कैसे करते हैं, और अपने 'राज़ों (Secrets) रहस्यों की हिफ़ाज़त दुश्मनों से किस हद तक करते हैं और अपने भाइयों (धर्म से) के साथ किस हद तक हमदर्दी व सौहार्द रखते हैं। दुःख है कि आज ये गुण दूसरों में मिलते हैं और हमारे अपने इनसे ख़ाली हैं।

इसी तरह एक रवायत में पहली वाली बात यानि नमाज़ के पहले वक़्त की पाबन्दी (समय आते ही पहले पढ़ते रहना, और इसे बराबर करते रहना) का बयान है–

मालूम होता है कि जो चीज़ें ऊपर बयान की गई हैं वह उस ज़माने में शियों की ख़ास पहचान थीं

**(बक़िया पेज नं0 16............................)**

## विश्व स्तर पर मुसलमानों का नरसंहार जारी हैः क़ायदे मिल्लत मौलाना कल्बे जव्वाद

**बर्मा, शाम और ईराक़ में हो रहे मज़ालिम पर अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की दृष्टि क्यों नही जाती?**

अति खेदजनक बात है कि अभी तक बर्मा और म्यांमार में मुसलमानों पर उत्पीड़न का सिलसिला कम नहीं हुआ है। मीडिया से प्राप्त जानकारी के अनुसार बर्मा में मुसलमानों की इबादतगाहें (पूजा स्थलों) ध्वस्त कर दी गयी हैं और उनके अवक़ाफ चरागाहों में बदल गये हैं। उनके खेत खलियानों पर क़ब्जा कर लिया गया है और प्रति दिन उग्रवादी उनकी औरतों और बच्चों के साथ जियादतियां कर रहे हैं, परन्तु आचर्य होता है कि सम्पूर्ण विश्व में मानव अधिकार की सुरक्षा संगठनें इस बरबरीयत पर खामोश हैं। यही स्तिथि शाम, बहरैन और ईराक़ की है, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय संगठन जिसकी हैसियत जीवित लाश से ज्यादा नहीं है न मालूम कब अपनी खामोशी तोड़ेगी। इस आशय का प्रकट मौलाना कल्बे जव्वाद नकवी साहब ने 21 जूलाई 2013 ई० को आसिफी मस्जिद में नमाज़े जुमा के वक्तव्य (खुतबा) में हज़ारों नमाज़ियों को सम्बोधित करते हुए किया। मौलान ने कहा कि ''यदि विव में सैलाब या जलज़ला आ जाए, सोनामी का कहर बर्पा हो या किसी की इज्जत लूट ली जाये तो मीडिया इस घटना को नाना प्रकर से विव के सामने पो करती है। मानव अधिकार की सुरक्षा संगठनें ऐसे प्रभावित क्षेत्रों का दौरा करती है और अपने द्वारा हर सम्भव प्रयत्न करती हैं। विश्व स्तर पर आये सैलाब और जलजलों में हुई बर्बादियों के जब्र उन के लिए विव ाक्तियों के साथ अन्तर्राश्ट्रीय संगठन ने भी सहायता की पेशकश की थी लेकिन क्या मीडिया, मानव अधिकार की संगठनें और विव स्तरीय ाक्तियों नीज़ अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को बर्मा, शाम बहरीन और ईराक में मुसलमानों, विोशकर शियों के नर हत्या की घटनायें नज़र नहीं आतीं। उन्होने कहा कि ईराक और शाम में जुल्म व बर्बरीयत की हद हो गयी लेकिन अभी तक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन अथवा किसी मानव अधिकार के संगठन की तरफ से किसी प्रकार की कोई पेशकश नहीं हुयी जो इन संस्थाओं पर सवालिया निाान है। हां शामी उपद्रवियों की मदद के लिए अमरीका और इत्तेहादी शाक्तियां सामने आ जाती हैं। अमरीका ने तो यहां तक कह दिया है कि शाम में केमिकल हथियारों का प्रयोग हुआ है। जो नियम के विरूद्ध है अतः हम बाग़ियों को हथियारों की सप्लाई करेंगे जबकि अमरीका ने प्रत्येक युद्ध में खास तौर पर ईराक़ की जंग में केमिकल हथियारों का अधिकता से प्रयोग किया। आज भी ईरान के अस्पतालों में केमिकल हथियारों प्रभावित लोग मौजूद हैं। अन्त में क़ायदे मिल्लत ने मानव अधिकार की विश्वस्तरीय संगठनों और अन्तर्राष्ट्रीय संगठन से अह्वान किया कि वह नींद से जाग्रित हों और मुसलमानों की नर हत्या की घटनाओं के विरूद्ध ज़बान खोलें।

## अधिकृत बैतुल-मक़दिस में 93000 फिलस्तीनियों को घर रहित करने की इस्राइली स्कीम

बैतुल-मक़दिस में सम्भवतः 93000 फिलस्तीनी लोगों के घर रहित होने का ख़तरा हो गया है। विश्व उर्दू न्यूज एजेन्सी ''न्यूज़ नूर'' की रिपोर्ट के अनुसार 17 जूलाई को सैहूनी अधिकारियों ने मध्य बैतुल-मक़दिस में फिलास्तीनियों की व्यापारिक और आवासीय बिल्ड़िगों के ध्वस्त करने का आदेश जारी किया है। सैहूनी पुलिस और कार्पोरेशन के अधि ाकारियों ने अधिकृत बैतुल-मक़दिस के सिलवान क्षेत्र के मकानो को ध्वस्त करने का आदेश जारी करने से पूर्व उस क्षेत्र की भली भांति जांच की। अनुमानतः 15 दिन पूर्व सैहूनी शासन ने साराफन्दी, अलबिना और सियाम खानदानों के मकानों को घ्वस्त करने का आदेश जारी किया था। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की रिपोर्ट के अनुसार इस्राइल के इस आक्रामक कदम से सम्भवतः 93000 फिलस्तीनियों के बे घर होन का खतरा हो गया है।

(पेज नं० 7 का बाक़िया...............)

और ख़ास तौर से सिर्फ़ शियों में यह बात थी और दूसरे लोग उसमें ढ़ील बरतते थे लेकिन उसके बाद हमारी देखा देखी दूसरों ने ये अच्छाईयाँ अपना गुण ली और हमने आसानी और मौज मस्ती में पड़ कर अपने इस गुण को खो दिया।

इस बात को समझ लेना चाहिए कि अगर कोई नमाज़ के पहले वक़्त का कड़ाई से नियमित है तो उसके सब काम ठीक वक़्त पर कर सके पूरे होगें, उसे अपने कामों में तरतीब श्रम और सिस्टम (Discipline) की आदत होगी और इस तरह बहुत से काम वह क़ायदे के साथ कर सकेगा। लेकिन अगर नमाज़ के वक़्त पर पढ़ने का नियमित नहीं है तो फिर अपने किसी काम में भी वह वक़्त की परवाह (Punctuality) नहीं कर सकता। इसका नतीजा होगा, कामों बेढ़ंगापन और वक़्त की बरबादी।